प्राचीन काल की धार्मिक संस्कृति में संगीत

Dr. Bhuwneshwar Sharma
Kullu, Himachal Pradesh
Dr. Mritunjay Sharma
Department of Music, Himachal Pradesh University, Shimla

वेदों का स्वरूप

वेद आर्य जाति के र्स्वस्व हैं। भारतीय संस्कृति और भारतीय ज्ञान–विज्ञान, कला सब कुछ वेद मूलक है। अतः वेदों के स्वरूप पर विचार आवश्यक हो सकता हैं। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में लिखा है – मंत्र – 'ब्राह्मणयोर्वेददनामधेयम्' अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ ही वेद हैं। संस्कृत में वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है, जिसकी व्युत्पत्ति विद् धातु में धन् प्रत्यय लगकर हुई है। विद् धातु के चार अर्थ होते हैं – ज्ञान, सत्ता, लाभ, विचारणा। विद् ज्ञाने, सत्तायाम्, विद् लाभे, विद् विचारणे। तात्पर्य यह है कि वेद न केवल लौकिक अपितु आलौकिक ज्ञान के भी वाचक हैं। वेद भारतीय संस्कृत के प्रथम स्वतः प्रमाण भी हैं। वेद के लिए सबसे अधिक प्रचलित शब्द श्रुति हैं, जिनका संबंध श्रवण सुनने से है। वैदिककाल में यज्ञादि में जिन मंत्रों का व्यवहार होता था, वे व्यवहार एवं श्रवण परम्परा से व्यापक हो जाते थे। प्राचीनकाल में वेदों का गुरु–शिष्य परम्परा से सुनकर ही अध्ययन किया जाता था, इसी कारण नाम श्रुति हुआ। वेद विशुद्ध भारतीय धर्म, दर्शन एवं संगीत के आधार ग्रन्थ हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। महाभाष्यकार ने वेद की कुल 1131 शाखाएं बताई गई हैं।

वेद के प्रधानतया दो विभाग हैं – संहिता और ब्राह्मण। मन्त्रों के समुदाय को संहिता कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हीं मन्त्रों की एक प्रकार से विस्तृत व्याख्या हैं। परन्तु मुख्य रूप से यज्ञयाग का विस्तृत वर्णन ही इसका मुख्य लक्ष्य है। ब्राह्मण साहित्य के 3 भाग हैं – ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। यज्ञ कर्म तथा मन्त्रों की व्याख्या करने वाले 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। आरण्य में पठित होने के कारण 'आरण्यक' नाम की सार्थक संज्ञा है। उपनिषदों को वेदान्त भी कहते हैं, क्योंकि यह वेदों का अन्तिम भाग हैं। विषय की दृष्टि से वेदों के दो विभाग हैं – कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड। संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक में मुख्यतया कर्म की विवेचना की गई है। अतः कर्मकाण्ड की श्रेणी में आते हैं। उपनिषदों में ज्ञान की विवेचना की गई है अतः यह ज्ञानकाण्ड से विख्यात है। किसी देवता विशेष की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले अर्थ को स्मरण कराने वालों वाक्य को 'मन्त्र' कहते हैं। ऐसे मन्त्रों के समूह 'संहिता' की संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। संहिताएं चार हैं – ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, अथर्ववेद संहिता।

संगीत की प्राचीनता

भारत में संगीत–परम्परा बहुत प्राचीन है। अन्य विधाओं की भाँति संगीत का भी उद्‌गम वेद से हुआ है। यज्ञ के अवसर पर सामगान की प्रथा थी। धीरे–धीरे धार्मिक परिधि से निकलकर संगीत ने मुक्त वातावरण में प्रवेश किया। गीत के साथ वाद्यों के प्रयोग का प्रचलन हुआ तो नृत्य का भी विकास हुआ और अन्त में नाट्य भी उसमें आ मिला। शास्त्रकारों ने 'संगीत' शब्द की निम्नवत् व्याख्या की है।

गीतं वाद्यं तथा नृतं त्रयं संगीत मुच्यते।'' – 'संगीत रत्नाकर'

गीत, वाद्य तथा नृत्य–इन तीनों का आधार स्वर तथा लय है। स्वर तथा लय नाद के परिष्कृत रूप में यही कारण है कि ये तीनों कलाएँ संगीत के अन्तर्गत मान्य है। इन तत्वों में गीत की उपयोग्यता की प्रधानता है, क्योंकि गीत में स्वर और लय के साथ शब्द का योग बन जाता है।

संगीत की प्राचीनता वेद मन्त्रों का पठन तथा गायन कर्मकाण्ड में आदिकाल के अभिजात संगीत का जनक है। वैदिक काल, वेदों के उद्‌भव, विकास का प्रचलन के साथ को कहा जा सकता है। वैदिक काल के विद्वानों ने 6000 से 8000 वर्ष पूर्व माना है। उनके अनुसार मेसोटोमिया की सभ्यता एवं संगीत सबसे प्राचीन है। इसका समय 4000 ई.पू. का माना गया है। वैदिक काल खण्ड में जिसमें वेदों के मन्त्रों के द्वारा देवताओं का पूजन तथा यजन आदि होता था। वेद ईश्वर के मुख से उद्‌भव तथा मन्त्र दृष्टा मुनियों द्वारा सुनने के पश्चात संकलित किया जाता है। श्रवण करने के कारण वेदों को श्रुति के नाम से भी जाना जाता था।

पुराविदों के अनुसार संगीत कला तथा शास्त्र उद्‌भव स्वयम्भू परमेश्वर से हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि स्त्रोत है तथा भगवती देवी सरस्वती गीत व वाद्य कला की प्रवर्तिका है। दत्तिल के अनुसार गान्धर्व के आदि प्रवचनकार स्वयम्भू ब्रह्मा हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार गान्धर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्यवेद स्वयं ब्रह्मा की रचना है। नृत्यकला, ताण्डव तथा लास्य रूप शिव जी तथा माँ पार्वती की देन मानी गई है। ''संगीत दर्पण'' के लेखक दामोदर पंडित जी के मतानुसार प्राचीन संगीत की उत्पति ब्रह्मा जी से ही हुई है अपने मत की दृष्टि करते हुए उन्होंने लिखा है –

द्रहिणेत यदान्विष्ट प्रयुक्त भरते न च। महादेववस्य पुरवस्तन्मार्गार्ख्य विभूक्तदम।।

अर्थात् ब्रह्मा जी ने जिस संगीत को शोध कर निकाला, भरत मुनि ने महादेव के सामने जिसका प्रयोग किया अर्थात् जो मुक्ति दायक है व संगीत है। वेदों में ऋग्वेद को सबसे प्राचीनतम् वेद ग्रन्थ माना गया है। इससे भारतीय संगीत पर प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही यूनान, रोम, मिस्त्र जैसी प्राचीन

सभ्यताओं के संगीत के सम्बन्ध में भी पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों का इस सम्बन्ध भारत के बाहर भी व्यापक रूप से था। वेद का 'गान्धर्व' शब्द ईरान के 'गन्दरेवा' तथा यूनान में 'केन्टारास' के रूप में पाया जाता है। वेद का 'अप्सरा' शब्द मिश्र भाषा में नर्तिका के अर्थ में पाया जाता है। भारतीय संगीत का प्राचीन वाद्य वीणा एवं करताल मिश्र में लोकप्रिय वाद्य रहे हैं। वहाँ वीणा को 'बेनी' तथा करताल को 'क्रोटोलन' के नाम से जाना जाता है। संस्कृत ग्रन्थों में संगीत धारा के अनुसार ऋग्वेद में गीत, वाद्य, नृत्य तीनों कला के सम्बन्ध में अनेक उल्लेख पाये जाते है। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र तथा गीति जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

यह सभी तत्कालीन गीत के प्रकार थे इनका आधार छन्द और गायन शैली थी। गीत तथा उसकी धुन के लिए 'साम' संज्ञा भी रही। साम धुन या स्वरावली के लिए पर्यावाची शब्द रहा है। यह तत्कालीन जन संगीत के अन्तर्गत गाई जाने वाली धुनें थी। इन्हीं के तर्ज पर वैदिक मन्त्र गाये जाते हैं। संगीत लोकरंजन तथा ईश्वर रंजन दोनों के लिए उपयुक्त माना जाता है। ऐसी आर्यो की धारणा थी। यज्ञयाग के अवसर पर मन्त्रों के साधारण पाठ–पठन की अपेक्षा मन्त्रों के गायन अधिक प्रभावशाली माना जाता था। इस गायन के लिए तत्कालीन धुनें उपयुक्त मानी गई और इन्हीं के आधार पर वैदिक ऋचाएं गाई जाने लगी। प्राचीन संगीत में शब्द और स्वर दोनों का समान महत्व माना जाता था। गीत गाने के लिए शब्द की आवश्यकता होती थी। इस रूप में वैदिक ऋचाओं को लिया गया और स्वर रचना की दृष्टि से तत्कालीन धुनों को लिया गया। स्वर और शब्द का यही गठबन्धन 'साम' कहलाता था। आजकल जैसे रचयिता के नाम से सूरदासी मल्हार, रामदासी मल्हार, मीरा की मल्हार, चरजू की मल्हार आदि नाम जाने जाते हैं, वैसे ही वैदिक काल में द्युतान गायक के नाम से 'द्यौतान' बैखानस के नाम के गायक 'बैखानस' और 'शार्कर' नाम गायक के नाम से 'शार्कर' साम प्राचीन संगीत में प्रसिद्ध थे।

विद्वानों के मत में संगीत का जन्म ओम् से हुआ है। ओम में अ, उ, म ये तीन अक्षर है जो सृष्टि की उत्पति रक्षण तथा शक्ति के सूचक है। इस प्रणव (ओम) में तीन गुणों की शक्ति है, इसी कारण प्रणव को ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत तीन स्वरों की सहायता से ही उच्चारित किया जा सकता है। वेदों में वर्णन आता है कि ओंकार (ओम्) से ही स्वर बने हैं। ओम के तीनों अक्षर अ, उ और म इन तीनों शक्तियों के द्योतक है।

अ – उत्पत्ति, शक्तिद्योतक सृष्टिकर्ता ब्रह्मा

उ – धारक, पालक अर्थात् स्थिति शक्ति का प्रतीक विष्णु

म – महेश शक्ति का द्योतक।

तीनों शक्तियों का द्योतक परमेश्वर हैं। वैदिक पृष्ठभूमि को देखें तो ब्रह्मा ने चारों मुखों से चार वेदों की उत्पति की – ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। वैदिक साहित्य से यह निश्चित होता है कि संगीत सामवेद के समस्त मन्त्र गेय है। अतः सामवेद से ही संगीत की उत्पति मानी जाती है। सामवेदीय गेय पद् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इन तीनों स्वरों में गाये जाते हैं। आचार्य पाणिनि ने कहा है, ''इन तीनों स्वरों के अन्तर्गत सा, रे, ग, म, प, ध, नि सातों स्वरों का समावेश है।''

प्राचीन संगीत की उत्पति का अध्ययन के विषय में पंडित दामोदर ने सात स्वरों की उत्पति पशु पक्षियों द्वारा बताई है, मोर से षड़ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गांधार, कौआ से मध्यम, कोयल से पंचम, मेढ़क से धैवत और हाथी से निषाद् स्वर की उत्पति हुई। अरब के इतिहासकार ''ओलासीनिज्म'' के अनुसार मानव को सबसे पहले संगीत बुलबुल से मिला। संसार में उत्पन्न होने के बाद मानव को चिड़ियों से मधुर स्वर सुनने को मिला। नित्य चिड़ियों की उस बोली को सुनने से उस सुने स्वर को अपने कंठ से निकालने की प्रेरणा मिली और इसी घटना से संगीत की उत्पति हुई। एक अन्य फारसी विद्वान के अनुसार पहाड़ी पर 'मूसीकार'' नमा का एक पक्षी होता है। जिसकी चोंच में बांसुरी की भान्ति सात सुराख होते हैं। जिनसे सात स्वर प्राप्त हुए। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अलैनटाल के मतानुसार जब मानव ने भाषा, रहन–सहन, सामाजिक व्यवहार आदि ने सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित अवस्था को प्राप्त कर लिया तब सभ्यता के विकास के साथ संगीत का जन्म हुआ। जेम्सलोंग के मतानुसार, पहले मनुष्य ने बोलना सीखा, चलना फिरना सीखा और फिर क्रियाशील हो जाने पर उसके अन्दर संगीत स्वतः उत्पन्न हुआ।

प्राचीन संगीत की उत्पति के विषय में कहा जाता है कि ऋग्वेद काल में गायन के साथ ही वाद्य का निरन्तर प्रयोग रहा है। ऋग्वेद में निम्न वाद्यों के साथ ही वाद्य का उल्लेख किया जाता है। यथा दुन्दुभि, वाण, नाड़ी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग, तथा आघाटि। दुन्दुभि की धीर गम्भीर ध्वनि का उल्लेख ऋग्वेद में कई बार हुआ है। ऋग्वेद 8.28.05 का रचियता ऋषि उलूखल से प्रार्थना करता है कि वह विजेताओं के द्वारा बजाई जाने वाली दुन्दुभि के समान ध्वनि उत्पन्न करें – 'जयतामिव दुन्दुभिः।' दुन्दुभि अपनी ध्वनि मात्र से विपक्षी को पराजित करती थी ऐसी मान्यता मन्त्र में पाई जाती है – ''स दुन्दुभे सजुस्त्रिेण देवैर्दुराद् दवीयो अप सेद्य शत्रुन।''

ऋ0 9.5.1/11 में वाण नामक तन्त्री–वाद्य की गम्भीर ध्वनि का वर्णन आता है – 'उत्तेशुस्मास ईरते ..... वाणस्य चोदयापविम्।' इस मन्त्र में सोम रस से प्रार्थना की गई है कि पर्जन्य धारा के

समान पात्र में तेल धारावत् गिरते हुए 'वाण' की भांति गुंजा हुआ स्वर उत्पन्न करे। वाण वाद्य का वादन 'पवमान' सोम के प्रीत्यर्थ किये जाने का उल्लेख निम्न त्रक् में है :–

'प्रहसासः स्तृपलं पवमानं सखायो दुर्मषि साकं प्रवदत्ति वाणम्।''

इस प्रकार प्राचीन संगीत की उत्पति के विषय में विभिन्न मत दिए गए है। लेकिन संगीत की मूलधार वेदों को ही माना गया है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नवग्रह में बुधग्रह वाणी तथा बुद्धि प्रदान करता है तथा गुरु ग्रह धर्म कर्म विद्या प्रदान करता है तथा शुक्र ग्रह संगीत, कला, सौन्दर्य प्रदान करता है। यह अवधारणा वैदिक ग्रन्थों की है।

पौराणिक परम्परा में संगीत

पुराण सामान्य भारतीय जनता के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के अवलम्ब है। इस प्रकार से उन्हें लौकिक वेद ही कहा गया है। भारतीय पौराणिक साहित्य की विशेषता है कि उनमें नाना प्रकार के ज्ञान–विज्ञान, धर्म,दर्शन, संगीत व कर्मकाण्ड, भक्ति की अभिव्यक्ति आख्यानों के माध्यम से हुई है।

पुराण–व्युत्पत्ति

पुराण का मूल अर्थ है – ''प्राचीन''। पुराणाम् आख्यानम् के अनुसार शब्द का अर्थ है – प्राचीन आख्यान। 'अथर्ववेद तथा छान्दोंग्योपनिद में भी यह शब्द में इसी अर्थ में प्रयुक्त है। यास्क ने निरुक्त में पुराण शब्द का 'पुराभव'' अर्थात् पुराणी घटनाएँ – यह अर्थ स्फुट होता है। ''पुरा'' अव्यय पद है। जिसका अर्थ है – अत्यंत प्राचीन। संस्कृत साहित्य में 18 की संख्या पवित्र व्यापक और गौरवशाली मानी गई हैं महाभारत के पर्वों की संख्या 18 है, श्रीमद्भागवत गीता में 18 अध्याय है। पुराणों की संख्या भी सर्वसम्पति से 18 मानी गई है। जहाँ पुराणों में क्रम विवक्षित है वहाँ निम्नलिखित प्रकार से पुराणों के नाम निर्दिष्ट है – 'ब्रह्म पुराण, पद्य पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण या शिव पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, सकन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्सय पुराण, गरूड़ पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण।''

पुराणों में संगीत

पुराणों में संगीत की भूमिका अत्याधिक पाई गई है। 'हरिवंश पुराण' में सात–स्वर, ग्राम–राग, तीन स्थान, मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य तथा विभिन्न वाद्य–यन्त्रों का वर्णन प्राप्त होता है। लिंग–पुराण से विदित होता है कि शिवजी के प्रधानगण नन्दिकेश्वर थे। उन्होंने नृत्यकला पर 'भारतार्णव' नामक विशाल ग्रन्थ लिखा जिसमें शिवजी की विभिन्न नृत्य–मुद्राओं का वर्णन किया गया है। 'मत्स्य पुराण' में उल्लेख मिलता है कि बृष्टि–वंशज राजा तैत्तिरि ने अपनी पुत्री को संगीत तथा नृत्यकला की शिक्षा दिलाई थी। मार्कण्डेय तथा वायु पुराणों में स्वरों, तीन ग्रामों, मूच्छनाओं के अतिरिक्त प्रणव,

पुष्कर, मृदंग, दर्दुर वीणा तथा देव–दुन्दुभि आदि का सामीप्य प्राप्त करने के लिए वाद्य–वादन किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। इन वाद्यों को विभिन्न देवी–देवताओं से सम्बन्धित किया गया था। 'विष्णु पुराण' में साम–गायन की महत्ता स्वीकार करते हुए लिखा गया है कि साम में प्रयुक्त होने वाली प्रत्येक ध्वनि साक्षात् ईश्वर का एक भाग है। हरिवंशपुराण में उर्वशी, हेना, रम्भा, मेनका, मिश्रकेशी, तिलोत्रमा आदि तत्कालीन नर्तकियों उनके विभिन्न वाद्य–यन्त्रों और नृत्य सम्बन्धी रीतियोंा का उल्लेख किया है।

पूजा–अर्चना अराधना में शंख वाद्य की भी भूमिका पुराणिक काल में भरपूर रही है। मंग्लोत्सव तथा युद्ध अवसरों पर शंख बजाये जाने की प्रथा की। आज भी पूजादि के अवसरों पर शंख बजाये जाते हैं। कुमार के जन्मोत्सव पर शंखनाद के साथ युद्ध का प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार प्रत्येक सूची या सेना नायक का अपना ध्वज होता था उसी प्रकार प्रमुख योद्धाओं के पास होते थे। विविध योद्धाओं से शंखों का नाम महाभारत में मिलता है। श्रीकृष्ण के शंख का नाम 'पांचजन्य' अर्जुन का 'देवतन्त्र', युधिष्ठिर का अनंतविजय, भीम का पौण्ड्र, नकुल का सुघोष तथा सहदेव का मनिपुष्पक था। वायु तथा नारद पुराण के अनुसार भी शंख का प्रयोग युद्ध के आरम्भ व अन्त में किया जाता था। साथ ही दुन्दुभि का विशेष प्रयोग सेन–प्रचरण के समय होता था। ''त्रिसाम हन्यतामेवा दुन्दुभिः शुत्रभीवणी''। साम का यहाँ अर्थ स्वर। महाभारत में युधिष्ठिर की स्तुतिगान का उल्लेख है। नर्तकों तथा गायकों के साथ मृदंग, भरी, दुदुंभि आदि वाद्य यन्त्रों के बड़े शब्द का भी उल्लेख है। 'तूर्य' का प्रयोग युद्ध शान्ति दोनों के लिए होता था। किसी व्यक्ति के बध में तूर्य बजाया जाता था।

तन्तुवाद्यों में वीणा सर्वाधिक लोकप्रिय थी। वायु पुराण में कहा गया है कि वीणा शिव को बहुत प्रिय है। वीणा का सम्बन्ध विधा व संगीत की देवी सरस्वती से जोड़ा गया है। नारद पुराण पुरुषोत्तम पूजा के समय वीणा बजाने का उल्लेख मिलता है। वीणा की सप्तंत्रियों सप्त शुद्ध स्वरों के निबद्ध की जाती थी और मूर्च्छना प्रषंच से विविध स्वर लहरियों का निमार्ण किया जाता था। वीणा वाहन अंगुलि से किया जाता था न कि वादन दण्ड से। वीणा गान्धार स्वर की मूर्च्छना स्थापित किये जाने का उल्लेख है। उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पौराणिक वादन में भी त्त, वितत, घन, सुषिर न चारों प्रकार के वाद्यों का प्रचलन था। इसी प्रकार स्कन्द पुराण के एक श्लोक में संगीत आदि द्वारा मानव के उत्थान की ओर ले जाने वाली अलौकिक शान्ति का निर्देश किया गया है –

गीतं वाद्य च नृत्य च नाट्य विष्णु कथा मुने।
यः करोति स पुण्यात्मा त्रिलोक्योपरि संस्थितः।।

श्रीमदभागवत पुराण श्रेष्ठ पुराण माना गया है। इस पुराण में भक्ति, योग, साधना कर्मयोग व संगीत का वर्णन पाया जाता है। श्रीमद्भागवत के कृष्ण स्वर एक ऐसे चरित्र में प्रस्तुत हुए है जो कि संगीत की दृष्टि में महान वंशी वादन तथा रास रचियता माने गए है। श्रीमद्भागवत में वेणु गीत को सुनकर गोपियों का हृदय भी वश में नहीं रहता था। महाभारत में जो श्रीकृष्ण राजनितिज्ञ थे, श्रीमद्भागवत पुराण में जो कही बाल चरित्र रूप में कही भक्ति के आधार के रूप में, वही कृष्ण गोपियों के श्रृंगार रस का कारण बन गये। दशम सकन्ध में यद्यपि इस रस का पूर्ण परियाक है तथापि अन्य स्कन्धों में भी श्रृंगार दिखायी देता है। तृतीय सकन्ध में –

शरच्छशिकरैपृष्टं मानयन रजनीमुखम्।
गायन् कलपदं रेने स्त्रीणां मणलमण्डनः।।

शरद कालीन रात्रियों में चाँदनी के छिटक जाने पर मधुर गीत गाते हुए श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रास विहार करते है। श्रीमद्भागवत पुराण भक्ति परक अमूल्य ग्रन्थ है। एक मात्र भागवत 'गीत परक' ग्रन्थ है। जिसमें छन्दों के माध्यम से प्रेम की चश्मोत्कर्षता, विरह की तीव्र वेदना, संसार की कटुता की अनुभूति से हृदयोद्गार गीत रूप में रचतः ही निकल पड़े हैं। भागवतकार ने इन गीतों को – वेणु–गीत, गोपिका–गीत, युगल–गीत, भ्रमर–गीत, द्वारका की श्री कृष्ण पटिनयों के गीत, पिंगला गीत, भिक्षु गीत, ऐल–गीत, उपर्युक्त सभी गीत संस्कृत के वर्णवृत्तों–रथोद्वता, इन्द्रवज्रा, मालिनी आदि में रचे हैं। संस्कृत साहित्य में अनुष्टुप छन्द ने सर्वाधिक लोक प्रियता प्राप्त की है। भागवत पुराण में भी अधिकोशतः स्थलों पर अक्षर शब्द अनुष्टुप एवं वर्णवृत इन्द्रवज्रा, वंशस्य, बसततिलिका आदि छन्दों का प्रयोग है।

रामायण काल में संगीत

इतिहासकारों के मतानुसार ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी में महर्षि बाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी। इस महाकाव्य में तत्कालीन भारतीय समाज की सभ्यता, राजनीति संगत व संस्कृति का विस्तृत परिचय मिलता है। उस समय वैदिक यज्ञों के अनुरूप राजसूय एवं अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान होता था। वाजसनेई–संहिता के अनुसार, उस समय पुरुष मेघ यज्ञानुष्ठान की भी प्रथा थी, जिसमें 184 तक नरबलि की रीति थी। महर्षि बाल्मीकि वैदिक व लैकिक व लौकिक दोनों ही संगीत में परागत थे। उन्होंने लव कुश के माध्यम से संगीतिक उपादानादि का परिचय दिया है। महर्षि भरत ने इनका परिचय देने हुए कहा है –

नानातोद्यविधाने प्रयोनयुक्त प्रवादने कुशलः।
अतोद्योयति कुशलो यस्मात् स कुशी लवस्तस्यात्।।

अर्थात् नाटक के उपयोगी गीत–वाद्यादि में कुशल शिल्पियों को कुशीलव कहा जाता है। वस्तुतः उसे समय गायक शिल्पी से आख्यान – कथक या सभा गायक समय का वर्णन व उल्लेख भी मिलता है। महर्षि बाल्मीकि ने कहा है कि राग विकास के लावव्य गुण अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने 'बालकाण्ड' में जाति राग एंव 'सुन्दरकाण्ड' में कौशिक राग व ग्राम रागादि का अति सुन्दर वर्णन किया है। इसमें प्रतीत होता है कि उस समय गन्धर्व गान के अन्तर्गत जातिराग व ग्राम रागों का प्रचलन था। उन्होंने स्वर, स्थान, लय भेद, आठ प्रकार के रस आदि का विस्तृत परिचय दिया है। गांधर्व गान के प्रसंग में उन्होंने काकु स्वर का भी परिचय दिया है। उन्होंने कहा है –

तो स शुश्राव काकुतस्य : पूर्वाचार्य विनिमिताम्।
अपूर्णा पाठ्यजाति चगेयेन समलकृतवाम्।।
प्रभावैर्वहाभिग्रद्धां तन्त्रीलय समान्विताम्।

अर्थात् मन के भिन्न–भिन्न भाव प्रकाश के लिए कण्ठ स्वर भी जो भिन्नता व विचित्रता व्यक्त होती है। उसको 'काकु' कहा जाता है। उन्होंने पूर्वाचार्य के रूप में भरत का नामोल्लेख किया है। यह सम्भवतः आदि वृद, सदाशिव या व्रह्मभरत थे। प्रसंगः उल्लेखनीय है कि जब महाराजा दशरथ की मृत्यु हुई तब आमस्थों ने एक न्यायप्रिय व सर्वप्रतिपालक राजा के लिए जिन–जिन गुणों का उल्लेख किया था, उनमें से एक था – राजा विहिन राज्य में पोषण की कमी के कारण मृत्यु, गीत, नाटक, उत्सव व समाज, किसी की भी उन्नति नहीं हो सकती। दशरथ की मृत्यु के विषय में न जानकर भी भरत को ज्ञात हो गया था कि राज्य में अवश्य कोई अमंगल हुआ। उन्होंने अपने सारथी से कहा कि नगर में भेरी, मृदंग, वीणा आदि सभी वाद्ययन्त्र स्तब्ध है। संगीत वहीन सम्पूर्ण नगर अत्यन्त विवादमय है अवश्य कोई अमंगल हुआ है। वस्तुतः रामायण का एक गान्धर्व या गीत ग्रन्थ कहा जा सकता है। जिसका जीवन्त रूपायन लव–कुश के सुमधुर काण्ठ स्वर से किया गया था। केवल लव–कुश ही नहीं अपितु स्वतः श्रेणी के लोगों के लिए ही रामायण पाठ नित्य कर्म का नित्य साधन बन गया था, जो अब भी प्रचलित है।

महाभारत काल में संगीत

भारतीय साहित्य की विशिष्ट धरोहर है ''महाभारत का महाकाव्य'' इस विशाल काल अन्यत्र नहीं महाभारत में साम एवं गाथा गायन का बहुधा उल्लेख मिलता है। साम गायन एवं गाथाओं का सम्बन्ध पूर्व की भांति ब्राह्मणों से हो था ही, किन्तु विश्रावसु इत्यादि गंधर्वों के साथ भी था। आश्रम जहाँ ऋषि, मुनि वास करते थे सदा काम एवं अन्य के रूप में गाथा गायन का उल्लेख महाभारत में मिलता है। महाभारत में गायन व वादन एवं नृत्य के साथ अलग से भी वर्णन मिलता है।

गायन के लिए ''गीत'' सज्ञा बहुधा अनेक स्थलों पर उपयुक्त की गई है। गायन विभिन्न अवसरों पर होता था। अर्जुन के जन्म के पूर्ण जब देववाणी हुई थी उस समय अप्सरा वृन्द ने गायन वादन किया था एवं प्रसिद्ध गंधर्व तुम्बरू ने गंधर्वो के साथ मिलकर गीतरेभ किया था। युधिष्ठिर सभा में प्रविष्ट हुए थे उस अवसर पर थी मल्ह, नर, सूत, झल्लदि ने मंगल स्तुतियों द्वारा उनकी उपासना की थी। युधिष्ठिर की उपासना जो लोक करते थे उनके अन्तर्गत चित्रसेन, अमात्य सहित तुम्बरू गंधर्व, किन्नर, अप्सराएँ आदि भी अति थी। ये संगीत कुशल थी। यथा प्रमाण लय स्थान एवं तानो से युक्त, गायन, वादन करते थे सभा में सर्वदा गंधर्व एवं अप्सरायें वरूण की स्तुति करके आती थी। अर्जुन ने विश्रावसु से नाचने–गाने की विद्या को भी सीख लिया गया। उन्होंने उत्तम वाद्यों तथा गीतों के शब्द सुने तथा अप्सराओं के नृत्य भी देखें थे। राजा ययाति के समुख गंधर्व एवं अप्सराओं नृत्य एवं गीत करती थी। महाभारत में गायन सम्बन्धी कुछ शास्त्रीय शब्दों के संकेत भी मिलते है यथा प्रमाण लय, मूर्च्छना तान, आलाप, ताल, सप्त स्वरों के नाम इत्यादि। महाभारत में चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है। तत् वाद्य में वीणा के कई प्रकारों का उल्लेख हमें मिलता है। यथा विपंची वीणा का स्वर अत्यन्त मधुर होते हैं। द्रोपदी के स्वयंवर के अवसर पर वेणु आदि वाद्यों के साथ वीणा की भी ध्वनि गूंज रही थी।

साथ ही वाद्यों में दुन्दुभि, मृदंग, आनक, मुरज, पणव, पुष्कर, परक का वर्णन हमें मिलता है। इनका प्रयोग नृत्य के साथ संगत के रूप में तथा स्वतन्त्र वाद्य के रूप में भी होता था। सुषिर वाद्य में वेणु, कुंकभ, गोमुख, शंख आदि वाद्यों का उल्लेख महाभारत में पाया जाता है। घन वाद्य के झर्झर, स्वस्तिक, करताल, आदि वाद्यो का प्रयोग होता था। नृत्य के गायन, वादन के साथ स्वतन्त्र रूप में उल्लेख है। द्रोपदी की स्वयंवर सभा नर, नर्तकों से सुशोभित थी। गांधर्व, चित्रसेन, नृत्य एवं गायन का आचार्य था। मण्डप में भी नृत्य होता था। अतः रामायण व महाभारत काव्यों में कर्मकाण्ड व संगीत का भूमिशः प्रयोग हुआ है।

उपनिषदों में संगीत

उपनिषद् ग्रन्थों को वेदों का अन्तिम भाग होने से वेदान्त नाम से अभिहित किया है। उपनिषद्, शब्द का अर्थ है – ''वह ज्ञान या गुप्त रहस्य'' जो गुरु के समीप बैठने से प्राप्त होता है। इस आधार पर 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति अथवा विवेचन निम्न रूपेण किया जा सकता है यथा –''उप ब्रह्म सामीप्यं नि निश्च्येन सीदति प्राप्नोति या उपनिषद्'' अर्थात् जिसके द्वारा (उप) ब्रह्म की समीपता (नि) निश्चय पूर्वक (पद्) प्राप्त हो, उसको 'उपनिषद' कहा जाता है। ब्रह्म की समीपता अथवा ब्रह्म की प्राप्ति का एक मात्र साधन ब्रह्मा विचार या ब्रह्म ज्ञान ही है। उपनिषद् शब्द का अर्थ रहस्य की है।

यह अर्थ अमरकोषकार को मान्या इसलिए है क्योंकि उपनिषदों में (इत्युपनिषद) इति रहस्यम् यदि शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। उपनिषद् की संख्या 200 मानी गई है तथा कुछ एक विद्वानों ने 108 संख्या मानी है।

उपनिषदों में संगीत (साम)

उपनिषदों में भी सामगान की प्रचूर प्रशंसा पाई गई है। छन्दोग्य के अनुसार अग्नि से ऋक्, वायु से यजु तथा आदित्य से साम का निर्माण हुआ है। सामवेद का उदय अन्य सभी वाङ्मय के सदृश परमेश्वर के निःश्वास से माना गया है। परम पुरुष का शिर यजु, दक्षिण पक्ष ऋक तथा उत्तर पक्ष साम कहा गया है। सामवेद से सम्वत मन्त्र ब्राह्मणोपनिषद के अनुसार, गीत, वीणा, पणव, लासित सभी उसी की अंगभूत है।

हसिंत सदित गीतम्। वीणा पण्व लसितम अग्नि स्तेव विद्धि तत्। ओमित्येतदक्षरमुद्रीयम्

ओंकार यह अक्षर उदगीथ है, ओंकार वाङ्मय है और यह प्राण निस्पन्न होता है। उसका उच्चारण करने में प्राणों को ऊपर की ओर खीचंना पड़ता है। इसी कारण उसे ओंकार कहते हैं। उद्गीथ शब्द में तीन वर्ण है। प्राण ही 'उत्' है। क्योंकि प्राण से सब उठते है। वाणी ही 'गी' है क्योंकि वाणी को गिरा कहते हैं। प्राण से ही वाणी का उच्चारण होता है। तथा अन्न ही 'थ' है क्योंकि अन्न में ही यह सब स्थित है। अन्न ही प्राण का दाम अर्थात् रस्सी है। उद्गीथ मौलिक जगत् द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आदित्य, वायु, अग्नि प्रतिनिधित्व है।

उत् गी थ – उग्दीथ
प्राण गिरा अन्न
द्यौ अन्तरिक्ष अग्नि
सामवेद यजुर्वेद ऋग्वेद

वाक् का रस ऋक् है। ऋक् का रस साम है साम का रस उदगीय–ओंकार है। ओंकार मन्त्रों प्रारम्भिक चरण तथा अन्तिम चरण में उच्चारित किया जाता है। प्राचीन वैदिक परम्परा के अन्तर्गत ऋक् तथा साम का मण्डल सामंजस्य श्रेयस्कर माना गया है। छोदोग्य के अनुसार साम का आधार ''स्वर'' तथा स्वर का आधार है ''प्राण''। यज्ञ की सफलता के लिये स्वर सम्पन्न गान परमावश्यक है। स्वर का महत्व सामगान में स्वर्ग के तुल्य माना गया है। वाणी पर अधिकार सामगान के लिए प्रतिष्ठवर्धक मनाया गया है। इससे स्पष्ट है कि उपनिषद् में संगीत कला में निपुण वर्ग को स्वर्गीय आनंद का अभभोक्ता माना जाता है। इसी में, स्वरोंच्चारण करने में उन्होंने नासिका, वाणी, यज्ञ, श्रोत तथा मन के साथ ''प्राण'' अर्थात् दीर्घ विश्वास उक्त ध्वनि का प्रयोग भी किया है।

छन्दोग्य के अनुसार साम को गाते समय उसका प्रबन्ध, छन्द ऋषि तथा देवताओं का चिन्तन परमावाक है। सामगस को इसमें परम कल्याण का साधक माना गया है। साम के स्तोभाक्षरों हाऊ कर, हाइकर, ईकार सामगान का रहस्य इन्हीं आलापों के सम्पन्न ज्ञान में निहित बतलाया गया है। साम के सप्त भक्ति के विभागों के लघु नाम जो अघात्ररे से बनाये गये है – हूँ प्र. आ. उत. उप. तत्रानि। इसीउपनिषद् के 27वें खण्ड में बताया गया है कि जो उपासक इस साम की प्रतिष्ठा को जानता है वह प्रतिष्ठित होता है। सामगान की मधुर वाणी ही उसकी प्रतिष्ठा है। वाणी में ही यह सौन्दर्य और प्राण प्रतिष्ठित कहा जाता है। अगले खण्ड में प्रस्तोता द्वारा स्त्रोत में साम गाते समय 'असमों मा सद्गमय' आदि मन्त्रों के जन का विधान है। सामगान में भिन्न–भिन्न विषयों पर ध्यान केन्द्रित करना होता है इस बात का उल्लेख छांदोग्योपनिषद् में किया गया है। जिन ऋक् के उपर गान किया जाता है गायक को उस ऋक् की तरह जिस देवता की उसमें स्तुति की गई हो। उस देवता की तरफ, छन्द से स्तुति करनी हो उस स्तोभ की तरफ ध्यान रखना चाहिए। 6.1, उप 4.17.6 में सामगान के दूषित होने पर उसके प्रयजित के रूप से 'स्वः स्वाहा' इन मन्त्र से आहुति डालने का विधान किया गया है। ऐसा करने से माना वह साम के कार्य के साथ की त्रुटि को पूरा करता है। इस प्रकार वैदिक सामों का आध्यात्मिक विषय आरण्य तथा उपनिषदों में मिलता है। अतः उपनिषद में कर्मकाण्ड व ज्ञानकाण्ड के साथ साम संगीत का वर्णन भी पाया जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में संगीत

यह तो प्रायः सभी जानते है कि आर्य संस्कृति का मुख्य आधार 'वेद' है। आर्य संस्कृति वेद पर ही निर्भर है। जिसको हम अमौरुषय मानते हैं, अर्थात् वेद किसी विशेष पुरुष का बनाया हुआ नहीं है, वह ईश्वर की कृपा से ऋषियों के हृदय में प्रार्दुभूत है। इसलिए ऋषियों मन्त्र द्रष्टारः यह ऋषि का लक्षण प्रचलित हुआ है। उसके दो भाग है – मन्त्र और ब्राह्मण। ब्राह्मण ग्रन्थों के चार भाग है। विधि भाग, अर्थवाद भाग, उपनिषद भाग और आख्यान भाग विधि भाग में मुख्यतः कर्मकाण्ड सम्बन्धी विधानों का वर्णन हैं, अर्थवाद भाग में विभिन्न यज्ञों के करने की विधियाँ तथा उनके द्वारा प्राप्त होने वाले फलों के विधान और आज्ञायें वर्णित है। उपनिषद् भाग में ब्रह्मा तत्व पर विचार किया गया है तथा आख्यान भाग में प्राचीन ऋषियों के वंशो, आचार्यवंशों और राजवंशों की कथायें वर्णित है।

सामगान के विधि विधान के सम्बन्ध में इन ब्राह्मण ग्रन्थों से पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। सामवेद की जैमिनी शाखा का जैमिनीय ब्राह्मण अधुना उपलब्ध हो गया है। इसी को तलवकार तथा उपनिषद् ब्राह्मण के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इनमें मुख्य रूप से 'गायत्र साम' का वर्णन होने के कारण इसकी ऊपर संज्ञा (गायत्र उपनिषद्) है। साम को हिकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ

आदि सप्त 'भक्तियों– का विवरण इनमें बाहुल्य से पाया जाता है।1 ऐतरेय ब्राह्मण में बाग्देवी सरस्वती को इन्द्र से सम्बन्धित बताया गया है, और उसे 'वाग्ध्यैन्द्री' के नाम से सम्बोधित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के वचन 'योग वैसरस्वती' को आधार बनाकर सरस्वती का विदुषी नारी परक अर्थ किया है। साथ ही सरस्वती को नदी के साथ जोड़ा गया है, तथा 'नदी में' कहकर सम्बोधित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण की त्रयोदश काण्ड का में वीणा गणीगण की संज्ञा व्यवहृत हुई है। इसमें उच्चकोटि के आचार्यों को ईश्वरतुल्य मानते हुए 'वीणागणीगण' संज्ञा का प्रयोग हुआ है। जैमनीय ब्राह्मण में निम्न वाद्यों का उल्लेख मिलता है – कर्करी, अलानु वक्रा, कविशीर्स्पी, ऐषीकी, अपधारलीका तथा वीणा काश्यणी। वाणवाद्य की रचना तथा वादन विधि का वर्णन भी इनमें उपलब्ध है। कोषीतिक ब्राह्मण में संगीत को शिल्प की सज्ञा दी गई। इस काल में समान में नृत्य एवं संगीत की अनिवार्यता थी अैर संगीत पूर्णता धार्मिक कर्मसार का अंग बना दिया गया था। ऐसी मान्यता थी कि संगीत से राक्षस एवं पापों क नाश होता है, यथा–

लोकगान रूपा या वागाप्ति सा सप्तथा वदत्।
षड्जऋषभस्वरोयेता प्रवृत्ता तावदेव वैदिक वागप्यवदन्।।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि बिना साम–गान के यज्ञ सिद्धि नहीं होती। सामवेद से गान्धर्व वेद की उत्पति हुई और गान्धर्व वेद से सोलह हजार राग–रागिनियों का निर्माण हुआ। वाद में जितने भी ललित कला विषयक संगीत ग्रन्थों का निर्माण हुआ, उन सभी का मूल स्त्रोत राग रागनियाँ ही थी।

आरण्यक ग्रन्थों में साम संगीत

संहिताओं का अन्तिम भाग ब्राह्मण, ब्राह्मणों का भाग आरण्यक और आरण्यकों का अन्तिम भाग उपनिषद् है। आरण्यक ग्रन्थों की भी संख्या 1130 थी किन्तु आज केवल आठ ही उपलब्ध है। आरण्यक ग्रन्थों का विषय सांसारिक विषय वासनाओं एक नानाविध बाधा बन्धनों का परित्याग कर शांत, एंकात वनों में रहकर ब्रह्मा विद्या विषयक अन्तर ज्ञान की साश्रात प्राप्ति था। इन ग्रन्थों में कर्म मार्ग और ज्ञान मार्ग दोनों का समन्वय है। उपनिषद् ग्रन्थों ने जिस विस्तृत ब्रह्म ज्ञान का प्रतिपाद है। उसका मूलाधार में आरण्यक ग्रन्थ ही है।

आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट माने जाते है। इनमें प्रवृति मूलकर्त्ता की उपेक्षा निवृत्तयुन्मुखता की प्रवृत्ति विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। यही बात आरण्यकों में उल्लिखित सामों के विषय में भी है। ब्राह्मणों में प्रयुक्त साम जहाँ कर्त्तव्य कर्मकाण्ड से सम्बद्ध के वहाँ आरण्यकों में इनके आध्यातमिक एवं प्रतीकात्मक महत्व का विशेष प्रतिपादन हुआ है। फिर भी इसका मतलब यह नहीं कि ये साम

ब्राह्मणों के साम से भिन्न है। आरण्यकों में प्रतिपादित सामों के आध्यात्मिक प्रतीकात्मक विवेचन ब्राह्मणों में प्रतिदित सामों के प्रयोग की पुष्टि करते है। तेतेरय आरण्यक हिंकार का उल्लेख करते हुए उसका तादात्मय ब्रह्मा से माना है। तेतेरय आरण्यक 2.3.4. में साम नी प्रत्येक भक्ति की पाँच आवृत्ति में गान करने का उल्लेख है। वहां यह बताया गया है कि प्रस्तोता प्रस्ताव भाम का गान करता हुआ उसकी यांच बार आवृति करता है। उद्गाता पाँच बार अपने भाग 'उद्गीथ' का गान करता है। प्रतिहत्र 'प्रतिहार' का गान करता हुआ उसकी पाँच बार आवृति करता है। उद्गाता भी उपद्रव भाग का गान करता हुआ उसकी पाँच बार आवृति करता है। बाद में सभी निधन भाग का गान करते हुए पाँच बार उसकी आवृति करते हैं। इस प्रकार के गान में हकार प्रकार के 'स्तोभ' का उल्लेख है। वे 2.10 साम के गान को ब्रह्मायज्ञ की संज्ञा देता है, तथा स्वाध्याय स्तोभ रस की आहुति मानता है।